National Journal of
Hindi & Sanskrit Research

ISSN: 2454-9177
NJHSR 2025; 1(62): 231-235
© 2025 NJHSR
www.sanskritarticle.com

कपिल कुमार शर्मा
शोधार्थी,
हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय,
शिमला – 171005

डॉ० देवराज
सहायकाचार्य संस्कृत,
दूरस्थ एवं ऑनलाइन शिक्षा केन्द्र,
हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय,
शिमला – 171005

Correspondence:
कपिल कुमार शर्मा
शोधार्थी,
हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय,
शिमला – 171005

चन्द्रज्ञानागम में वर्णित अष्टावरण

कपिल कुमार शर्मा, डॉ० देवराज

भूमिका

भारतीय शास्त्र जगत् मूल रूप से दो भागों में विभक्त है- आगम तथा निगम। ये दो एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। निगम **वेद** कहलाते हैं तथा आगम शिव के मुख से निःसृत वाणी **तन्त्र** नाम से प्रसिद्ध है। आगम की उत्पत्ति शास्त्रों में साक्षात् भगवान् शिव के मुख से बतायी गई है, जिसे माता पार्वती ने सुना था-

आगतं शिववक्त्रात्तु गतं तु गिरिजामुखे।
मतं च वासुदेवस्य तस्मादागम उच्यते।।[1]

आगम मुख्य रूप से वैदिक एवं अवैदिक के भेद से दो प्रकार के कहे गए हैं। वैदिक में शैव, वैष्णव तथा शाक्तादि आगम तथा अवैदिक में बौद्ध एवं जैनादि आगम आते हैं। शैवागम द्वैत, अद्वैत, द्वैताद्वैत, विशिष्टाद्वैत तथा शक्तिविशिष्टाद्वैत के सिद्धान्त को मानते हैं।[2] ये कामिकादि शैवागम संख्या में अठाईस हैं, जिन्हें सिद्धान्तागम कहकर सम्बोधित किया गया है। इन्हीं में से एक चन्द्रज्ञानागम है, जिसका ज्ञान अनन्तरुद्र भगवान् ने देवगुरु बृहस्पति को दिया था।

प्रमुख शब्द

अष्टावरण, शैवागम, जङ्गम, रुद्राक्ष, भस्म, इष्टलिङ्ग, भावलिङ्ग, प्राणलिङ्ग, पञ्चाक्षर, पादतीर्थ, पादोदक, प्रणव, पञ्चाक्षर तथा षडाक्षर।

आवरण का स्वरूप

अष्टावरण शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है- अष्ट+आवरण, जिसमें अष्ट का अर्थ है- **आठ** तथा आवरण का अर्थ है- **ढ़कना**। शाम्भव व्रत के आठ अङ्गों को अष्टावरण की संज्ञा दी गई है। शिव को जानना तथा शिव की कृपा प्राप्त करना ही शाम्भव व्रत कहा गया है- **इदं शिवप्रसादैककारणं भववारणम्**।[3] कारणागम के अनुसार शाम्भव व्रत वैदिक तथा तान्त्रिक भेद से दो प्रकार का है। शाम्भव व्रत के आठ अङ्ग अर्थात् अष्टावरण गुरु, लिङ्ग, जङ्गम, तीर्थ, प्रसाद, भस्म, रुद्राक्ष तथा मन्त्र कहे गए हैं।[4] शक्तिविशिष्टाद्वैतवाद में भी इन्हीं अष्टावरणों की गणना की गई है।[5] ये अष्टावरण शिव के सहकारीभूत साधन माने गए हैं अर्थात् शिव को प्राप्त करने के साधन कहे गए हैं। इनमें गुरु, लिङ्ग एवं जङ्गम पूजा योग्य तथा भस्म, रुद्राक्ष एवं मन्त्र पूजा के साधन और पादतीर्थ एवं प्रसाद पूजा के फल कहे गए हैं। इन सभी अङ्गों का माहात्म्य शिवमहापुराण में भी विशेष रूप से उल्लिखित है। कर्णाटक की वीरशैव परम्परा के अनुसार इनकी संख्या सात बतायी गई हैं।[6] साँख्य दर्शन में भी इनकी संख्या सात ही निर्धारित हैं। योगशास्त्र के अनुसार देह, मन तथा बुद्धि आदि की रक्षा हेतु जो अष्टावरण कहे गए हैं, वही अष्टांग योग है। जिस प्रकार शत्रुओं से रक्षा हेतु कवच धारण किया जाता है, उसी प्रकार काम-क्रोधादि शत्रुओं से शिवभक्तों की रक्षा करने वाले ये अष्टावरण कहे गए हैं। ये शिवोपासना में मग्न शिवभक्त का संरक्षण करने वाले आठ कवच कहे गए हैं।[7] इनका महत्त्व साक्षात् भगवान् शङ्कर के ही तुल्य बताया गया है।

जैसा कि पूर्व में विदित हो चुका है कि संस्कृत साहित्य में अष्टावरणों का उल्लेख प्राप्त होता है। इसी प्रकार आगमशास्त्रों में भी अष्टावरणों का वर्णन प्राप्त होता है। आगमशास्त्र के अन्तर्गत चन्द्रज्ञानागम में भी अष्टावरणों(गुरु, लिङ्ग, जङ्गम, पादतीर्थ, प्रसाद, भस्म, रुद्राक्ष तथा मन्त्र) का उल्लेख किया गया है। अब इन अष्टावरणों का विस्तृत वर्णन प्रस्तुत है-

गुरु

चन्द्रज्ञानागम के अनुसार गुरु प्रथम आवरण अर्थात् शाम्भव व्रत का प्रथम अङ्ग कहा गया है। सनातन संस्कृति में गुरु का स्थान सर्वोपरि कहा गया है। गुरु से ही ज्ञान प्राप्त कर सभी अपने जीवन में सफलता को प्राप्त करते हैं।[8] चन्द्रज्ञानागम के अनुसार गुरु ही शिष्य को सम्प्रदाय की विधि के अनुसार शिवमन्त्र का उपदेश करता है। मोक्ष प्राप्त करने के लिए हमें सद्गुरु से ही ज्ञान की प्राप्ति होती है और बिना गुरु के हमें किसी फल की प्राप्ति नहीं हो सकती है-

मोक्षस्य दीक्षासंप्राप्त्यै गुरुः स्यान्मूलकारणम्।
न विना गुरुणा सिद्धयै साधनानि भवन्त्यलम्।।[9]

गुरु शिष्य को शिक्षा देकर गौरव प्रदान करता है। अतः शिष्य को सदैव गुरु के प्रति आदर का भाव स्थापित करने का प्रयत्न करना चाहिए। गुरु गुणवान्, विद्वान्, तत्त्वज्ञानी, शिव की भक्ति करने वाला तथा परमानन्द एवं मोक्ष दिलवाने वाला होना चाहिए। चन्द्रज्ञानागम के अनुसार गुरु गृहस्थ ही हो सकता है, सन्यासी एवं वानप्रस्थी को गुरु नहीं बनाना चाहिए। गुरु को साक्षात् शिव तथा शिव को साक्षात् गुरु कहा गया है, ये दोनों विद्या रूप में स्थित रहते हैं। सभी देव तथा मन्त्र गुरु के शरीर में विद्यमान रहते हैं, इसीलिए सदैव गुरु की आज्ञा का पालन करना चाहिए। शिष्य को गमन, शयन तथा भोजन आदि प्रत्येक कार्यों में गुरु की आज्ञानुसार ही आचारण करना चाहिए। जिस प्रकार जलती हुई लकड़ी जलकर नष्ट हो जाती है, उसी प्रकार शिष्य द्वारा सन्तुष्ट गुरु अपने शिष्य के सभी पापों को क्षणभर में ही नष्ट कर देता है-

यथा प्रज्वलितो वह्निर्निष्ठां काष्ठस्य निर्दहेत्।
तथाऽयमपि सन्तुष्टो गुरुः पापं क्षणाद् दहेत्।।[10]

गुरु के क्रोधित हो जाने पर शिष्य की आयु, धन, विवेक तथा शुभकर्म आदि नष्ट हो जाते हैं, इसीलिए शिष्य को मन, कर्म एवं वाणी से कभी कोई ऐसा कार्य नहीं करना चाहिए, जिससे गुरु क्रोधित हों। इसी प्रकार बुरी आदत वाले, बौने, कुबड़े, क्रोधी, कुटिल स्वभाव, दुष्ट, चपल, अपङ्ग अथवा अधिकाङ्ग, पापी, पिशुन तथा अन्त्यज आदि को गुरु नहीं बनाना चाहिए। तत्त्वों में प्रतिष्ठित बुद्धिजीवी, परमानन्द की अभिव्यक्ति वाला एवं बुद्धिमान गुरु का ही सदैव वरण करना चाहिए। गुरु के प्रसन्न होने तर शिष्य को निरन्तर गुरु की सेवा करनी चाहिए। शिव के क्रोधित होने पर गुरु शिष्य की रक्षा करते हैं, लेकिन गुरु के रुष्ट होने पर शिव रक्षा नहीं करते, इसीलिए सदैव गुरु को प्रसन्न रखना चाहिए-

शिवे रुष्टे गुरुस्त्राता न रुष्टे निजसद्गुरौ।
त्राता शिवस्तदेतस्माद् गुरुपूजारतो भवेत्।।[11]

लिङ्ग

चन्द्रज्ञानागम के अनुसार लिङ्ग द्वितीय आवरण अर्थात् शाम्भव व्रत का द्वितीय अङ्ग कहा गया है। लिङ्ग का तात्पर्य यहाँ शिवलिङ्ग से है। इस महालिङ्ग का बोध होने पर मनुष्य तुरन्त मुक्ति को प्राप्त कर लेता है। इस संसार की उत्पत्ति, स्थिति एवं लय का कारण ही लिङ्ग को माना गया है।[12] इसी प्रकार सूक्ष्मागम के अनुसार **लिङ्ग** शब्द में **लि** का अर्थ लय, **ङ्** का अर्थ स्थिति तथा **ग** का अर्थ सृष्टि किया गया है।[13] प्राचीन काल में जिस समय सभी ओर जल ही अवशिष्ट था तथा घोर गर्जना कर रहा था, उसी समय उस जल से तेजस्वरूप लिङ्ग उत्पन्न हुआ। वह लिङ्ग दिव्य, अप्रमेय तथा अनामय था, जिसमें प्रलय काल होने पर सम्पूर्ण जगत् एवं सभी देवता समा जाते हैं। यह अव्यक्त, अनन्त, अजर, त्रिगुणात्मक तथा अविकारी कहा गया है। शिवमहापुराण में यह लिङ्ग सकल एवं निष्कल के भेद से दो प्रकार का बताया गया है।[14] लिङ्गपुराण के अनुसार यह द्रव्यादि भेद से छः प्रकार का बताया गया है- **षड्विधं लिंगमित्याहुर्द्रव्याणां च प्रभेदतः**।[15] चन्द्रज्ञानागम में इस लिङ्ग के तीन प्रकार बताए गए हैं-

महालिङ्गं त्रिधा जातं सुजनानुजिघृक्षया।
प्रथमं भावलिङ्गं तु द्वितीयं प्राणलिङ्गकम्।।
तृतीतमिष्टलिङ्गं स्यादित्येवं त्रिविधं मतम्।।[16]

• भावलिङ्ग

जिसे केवल भाव रूप से जाना जा सकता है, उसे भावलिङ्ग कहा जाता है तथा यह निष्कल कहा गया है- **निष्कलं भावलिङ्गं स्याद् भावग्राह्यं परात्परम्**।[17] इसे सत्, चित्, आनन्द, शान्त, आदि, मध्य तथा अन्त से वर्जित होने के कारण निष्कल कहा गया है। केवल योगी-महात्मा आदि ही इस लिङ्ग की भावना कर सकते हैं, क्योंकि वही सांसारिक भावों को भूलकर शिवतत्त्व का साक्षात्कार कर पाते हैं।

• प्राणलिङ्ग

जिस लिङ्ग का साक्षात्कार केवल मन से ग्राह्य है, उसे प्राणलिङ्ग कहा जाता है तथा यह सकल एवं निष्कल कहा गया है- **प्राणलिङ्गं मनोग्राह्यं भवेत् सकलनिष्कलम्**।[18] भगवान् शङ्कर के ज्योतिर्मय इस प्राणलिङ्ग को मुख्य स्थान बताया गया है। यह हृदयकमल में विराजमान कल्याणकारी प्राण और उसके अन्दर स्थित मन है, जिसके द्वारा प्राणलिङ्ग की आराधना की जाती है।

• इष्टलिङ्ग

इष्ट की सिद्धि तथा अनिष्ट के परिहार के लिए जिस सकल लिङ्ग का ज्ञानेन्द्रियों द्वारा ग्रहण किया जाता है, उसे इष्टिलङ्ग कहा जाता है।[19] इसे गुरु दीक्षा देते समय शिष्य को देते हैं। दीक्षा के पूर्वाङ्ग को पूर्ण करने के पश्चात्, गुरु इसे शिष्य के शरीर पर बाँधता है[20] इष्टलिङ्ग को सामान्य अर्थात् बाह्य पूजा का मूल बताया गया है तथा यह भोग एवं मोक्ष प्रदान करने वाला कहा गया है।

जङ्गम

अष्टावरणों में से तृतीय आवरण अर्थात् शाम्भव व्रत का तीसरा अङ्ग **जङ्गम** बताया गया है। शब्दकल्पद्रुम के अनुसार पुनः-पुनः चलने वाले को जङ्गम कहते हैं।[21] इन्हें शैव सिद्धान्तों के धर्म का उपदेशक भी कहा जाता है। इनके लिए शिवयोगी तथा शिवभक्त

आदि नाम भी दिए गए हैं। भगवान् शङ्कर के दो रूप बताये गए हैं- स्थावर तथा जङ्गम अर्थात् स्थिर एवं गमनशील। स्थावर के भी दो प्रभेद कहे गए हैं- स्वयं व्यक्त तथा प्रतिष्ठित। ज्योतिर्लिङ्गों को स्वयं व्यक्त तथा आचार्य द्वारा प्रतिष्ठित किए गए लिङ्ग को प्रतिष्ठित कहा जाता है।

जङ्गम के भी दो भेद शास्त्रों में बताए गए हैं- मान्त्रिक एवं सहज।[22] मन्त्र का सामर्थ्य रखने वाला जङ्गम **मान्त्रिक** तथा माहेश्वर को **सहज** जङ्गम कहा जाता है। मान्त्रिक जङ्गम को चरलिङ्ग भी कहा जाता है तथा वीरशैव इसे इष्टलिङ्ग के रूप में शरीर पर धारण करते हैं। सहज जङ्गम के अनेक नाम हैं- माहेश्वर, चर, भक्त, शैव तथा जङ्गम आदि। इनके दो प्रकार के चिह्न होते हैं- आन्तरिक तथा बाह्य चिह्न। आन्तरिक चिह्न तीन हैं- मानसिक जाप, मानसिक पूजा तथा हृदय में परमेश्वर का साक्षात्कार। इसी प्रकार बाह्य चिह्नों की सँख्या दस हैं- भस्म-रुद्राक्ष-लिङ्ग धारण, गुरु सेवा, शिवस्तोत्र पाठ, शिव नामोच्चारण, शिवपूजन, शैवागम अनुसन्धान, शिवपुराण कथा श्रवण, जङ्गम सेवा, शिवभक्तों को अन्नदान तथा गुरु को दान करना आदि।

तीर्थ(पादतीर्थ)

चन्द्रज्ञानागम में चतुर्थ आवरण अर्थात् शाम्भव व्रत का चतुर्थ अङ्ग तीर्थ(पादतीर्थ) कहा गया है। पादतीर्थ का अर्थ है पादोदक अर्थात् चरणों को धोने से प्राप्त हुआ जल पादोदक कहलाता है।[23] यह साक्षात् शिव का ही अङ्ग माना गया है। गुरु एवं जङ्गम के चरणों को धोने से प्राप्त जल ही पादतीर्थ कहा गया है। गुरु एवं जङ्गम के घर में आने पर उनके चरणों का प्रक्षालन करना चाहिए तथा उनके शरीर के अङ्गों में शिव के अङ्गों की भावना कर पूजा करनी चाहिए। पादतीर्थ तीन प्रकार का कहा गया है- गुरु के चरणों, जङ्गम के चरणों तथा शिव(इष्टलिङ्ग) के चरणों का जल और इन्हें क्रमानुसार दीक्षा, शिक्षा तथा ज्ञान पादोदक कहा जाता है।[24] गुरु, जङ्गम तथा इष्टलिङ्ग इन तीनों के पादोदक का ग्रहण करना श्रेयस्कर बताया गया है, क्योंकि ये तीनों शिव का ही स्वरूप कहे गए हैं-

एकमूर्तेस्त्रयो भागा गुरुर्लिङ्गं च जङ्गमः।
तदेवंगुणकं ग्राह्यं गरुजङ्गमयोरपि।।[25]

यह पापों को नष्ट करने तथा ज्ञान की वृद्धि करने वाला है। यह पादतीर्थ बहुत ही पवित्र बताया गया है। सभी तीर्थों में स्नान का जो महत्त्व है, वह केवल मात्र गुरु के पादोदक को सिर पर धारण करने से प्राप्त हो जाता है। गुरु के पादतीर्थ की एक बूँद में सप्त सागरों के सभी तीर्थों के स्नान का फल विद्यमान रहता है। यह इस संसार को तत्काल मोक्ष प्राप्त करवाने वाला कहा गया है। इसीलिए सांसारिक बन्धनों से मुक्त होने के लिए गुरु, जङ्गम तथा इष्टलिङ्ग के पादतीर्थ का पान तथा स्नान सदैव करना चाहिए। गुरु, जङ्गम तथा इष्टलिङ्ग के पादोदक का महत्त्व एक समान बताया गया है। यदि इन तीनों में से एक का भी पादोदक प्राप्त हों तो अन्यों की भावना करने का विधान निर्दिष्ट है। भगवान् शिव का ही दूसरा रूप कहे जाने वाले गुरु को पाद्य समर्पित करना चाहिए तथा **पञ्चाक्षर** एवं **शतधार मन्त्र**[26] के साथ पादोदक का पात्र में संग्रह करना चाहिए। संग्रहित पादोदक को सिर पर धारण करने से अनन्त गुणा फल प्राप्त होता है। पादोदक को **'ऋतं सत्यं'**[27] मन्त्र के द्वारा पान करने का विधान बताया गया है। यह पादोदक अकाल मृत्यु का नाश करने वाला है तथा सभी रोगों एवं पापों का शमन करता है। यह मंगलों में मंगल, पवित्रों में पवित्र, क्रूर ग्रहों को शान्त करने वाला तथा इष्ट सिद्धि प्रदान करने वाला है-

सर्वदुःखप्रशमनं सर्वोपद्रवनाशनम्।
सर्वसिद्धिप्रदं सद्यः सर्वेषां मुक्तिदायकम्।।[28]

प्रसाद

पञ्चम आवरण अथवा शाम्भव व्रत के पञ्चम अङ्ग के रूप में प्रसाद का नाम आता है। गुरु, जङ्गम तथा लिङ्ग को भोजन करवाने के उपरान्त शेष अवशिष्ट को ही प्रसाद की संज्ञा दी गई है- **गुरुलिङ्गजङ्गमानां भुक्तशेषः प्रसादकः**।[29] यह प्रसाद भगवान् शङ्कर की प्रसन्नता का एकमात्र कारण बताया गया है। भगवान् शङ्कर को भोजन, जल तथा आघ्रात अर्पण करके ही स्वयं ग्रहण करना चाहिए, इस प्रकार ग्रहण की जाने वाली वस्तुओं को सनातन धर्म की संज्ञा दी गई है।[30] भगवान् शङ्कर को अर्पण किए बिना भोजन ग्रहण करने को पापों का भक्षण करने के समान बताया गया है। बिना शिव को चढ़ा प्रसाद कृमि-कीट आदि का ही भक्षण कहा गया है, इसीलिए अन्न, जल, पान, औषधि, पत्र, पुष्प तथा फल आदि बिना शिव को अर्पित किए ग्रहण नहीं करने चाहिए-

भुञ्जते ये तु सम्मूढास्त्र्यम्बकायासमर्पितम्।
ते भुञ्जते क्रिमीनेनांस्यधो गच्छन्ति शाश्वतम्।।[31]

मोक्ष प्राप्ति का साधन रूपी प्रसाद तीन प्रकार का बताया गया है- शुद्ध, सिद्ध तथा प्रसिद्ध प्रसाद।[32] गुरु को चढ़ाये जाने वाले प्रसाद को शुद्ध प्रसाद, इष्टलिङ्ग को चढ़ाये जाने वाले प्रसाद को सिद्ध प्रसाद तथा जङ्गम को चढ़ाये जाने वाले प्रसाद को प्रसिद्ध प्रसाद कहा गया है। इस प्रकार प्रत्येक वस्तु गुरु, लिङ्ग तथा जङ्गम को समर्पित करने के उपरान्त ही ग्रहण करनी चाहिए।

भस्म

चन्द्रज्ञानागम में भगवान् शिव के अष्टावरण अथवा शाम्भव व्रत के अङ्गों में छठे स्थान पर भस्म का ग्रहण किया गया है। शिवमहापुराण के अनुसार सृष्टि निर्माण के समय यह अग्नि के वीर्य के रूप में उत्पन्न हुआ था।[33] गोमूत्र तथा गोबर से मिलकर ही इस उत्तम भस्म का निर्माण होता है। चतुर्दशी तिथि को पञ्चाक्षर मन्त्र से अभिमन्त्रित करके तृण तथा जलादि गौ माता को खिलाकर, प्रातःकाल स्नानोपरान्त गाय से गोमूत्र तथा गोबर ग्रहण कर विधिपूर्वक भस्म तैयार की जाती है। पहले **भवाय नमः** मन्त्र द्वारा गोमूत्र तथा गोबर का मिश्रण कर, उसके चौदह पिण्ड़ों को सूर्य के ताप में सूखाने के पश्चात् अग्नि में जलाकर ही भस्म का निर्माण किया जाता है। चन्द्रज्ञानागम के अनुसार शान्तिक, पौष्टिक तथा कामद के नाम से यह भस्म तीन प्रकार की बताई गई है-

शान्तिकं पौष्टिकं भस्म कामदं च त्रिधा भवेत्।
गोमयं योनिसम्बद्धं यद्धस्तेनैव गृह्यते।
ब्रह्ममन्त्रैश्च संदग्धं तच्छान्तिकमिहोच्यते।।[34]

गौ के गोबर को हाथ में ग्रहण करने से बनाई जाने वाली भस्म को शान्तिक, पात्र में ग्रहण किए गए गोबर से बनाई जाने वाली भस्म को पौष्टिक भस्म तथा पृथ्वी पर गिरे हुए गोबर से बनाई जाने वाली भस्म को कामद भस्म की संज्ञा दी गई है। यह भस्म धारण तीन प्रकार का बताया गया है- उद्धूलन, अवगुण्ठन तथा त्रिपुण्ड्र।[35] मन्त्रों से अभिमन्त्रित जल रहित भस्मधारण को उद्धूलन, जल सहित भस्मलेपन को अवगुण्ठन तथा तीन रेखाओं में भस्मधारण करने को त्रिपुण्ड्र कहा गया है। इसे सिर, मस्तक, कान, स्कन्ध, हृदय, नाभि, बाहु आदि स्थानों पर धारण किया जाता है। इस भस्म को धारण करने से सभी तीर्थों का फल तथा पापों से मुक्ति प्राप्त हो जाती है।

रुद्राक्ष

अष्टावरणों में सातवाँ आवरण अथवा शाम्भव व्रत का सातवां अङ्ग **रुद्राक्ष** बताया गया है। वास्तव में रुद्र की आँखों से आँसू उत्पन्न होने के कारण ही इन्हें रुद्राक्ष कहा गया है और भक्तों के हितार्थ इन आँसुओं से रुद्राक्ष के पेड़ उत्पन्न हुए।[36] इसके दर्शन, धारण, स्पर्श आदि का बहुत महत्त्व बताया गया है। बछड़े सहित गाय का दान करने से जिस पुण्य फल की प्राप्ति होती है, उससे लाख गुणा फल रुद्राक्ष को देखने मात्र से प्राप्त होता है

श्रोत्रियाय सवत्साया धेनोर्दानेन यत्फलम्।
तत्फलं लक्षगुणितं दर्शनाल्लभते नरः।।[37]

इसी प्रकार रुद्राक्ष को छूने से करोड़ गुणा तथा धारण करने से सौ करोड़ गुणा फल प्राप्त होता है और लाख करोड़ गुणा फल रुद्राक्ष की माला से जाप करने पर प्राप्त होता है। आँवले की आकृति वाला रुद्राक्ष अच्छा माना गया है, बेर की आकृति वाला रुद्राक्ष मध्य स्तर का तथा चने के तुल्य आकार वाला रुद्राक्ष अधम कोटि का बताया गया है।[38] ब्राह्मण के लिए सफेद, क्षत्रिय के लिए लाल, वैश्य के लिए पीला तथा शूद्र के लिए काले रंग के रुद्राक्ष श्रेयस्कर बताए गए हैं।[39] ताम्र वर्ण, चिकनाई युक्त, कठोर, बृहदाकार, काँटों से युक्त रुद्राक्ष श्रेष्ठ बताए गए हैं। इसी प्रकार उत्तमादि गुणों के साथ-साथ वर्ज्य रुद्राक्षों का भी वर्णन प्राप्त होता है। कीड़ों द्वारा खाए गए, टूटे, काँटों से हीन, व्रण युक्त तथा विकृत रुद्राक्षों को वर्जित माना गया है।[40] इसी प्रकार मुख भेद से भी रुद्राक्ष के चौदह प्रकार बताए गए हैं, जिन्हें धारण करने से अनन्त फल की प्राप्ति होती है।

मन्त्र

अन्तिम आवरण अथवा शाम्भव व्रत के अन्तिम अङ्ग के रूप में **मन्त्र** का स्थान निर्धारित किया गया है। चन्द्रज्ञानागम के अनुसार मन्त्र केवल **पञ्चाक्षर** तथा **षडाक्षर** को कहा गया है यह मन्त्र अल्पाक्षर है तथा भगवान् शङ्कर का वाचक माना गया है।[41] **नमः** का उच्चारण पहले तथा बाद में **शिवाय** का उच्चारण करना चाहिए, इसे पञ्चाक्षरी विद्या कहकर सम्बोधित किया गया है।[42] चन्द्रज्ञानागम के अनुसार इसी पञ्चाक्षरी विद्या से सभी शब्द उत्पन्न हुए हैं। इसका प्रादुर्भाव सृष्टि की रचना के समय स्वयं भगवान् शङ्कर ने अपने मुखारविन्द से किया था और यह भगवान् शङ्कर का ही ज्ञान करवाने वाली विद्या कही गई है। इसे मूलमन्त्र, पञ्चाक्षर मन्त्र तथा पञ्चाक्षरी विद्या आदि नामों से पुकारा जाता है। इसी पञ्चाक्षरी विद्या अर्थात् **नमः शिवाय** के प्रारम्भ में प्रणव का उच्चारण करने पर यह षडक्षरी विद्या अर्थात् **ॐ नमः शिवाय** कहलाता है-

सिद्धपद्मासनासीना नीलकुञ्चितमूर्धजा।
इयं प्रणवपूर्वा तु षडक्षरीति कथ्यते।[43]

मन्त्रमहार्णव के अनुसार षडाक्षर अर्थात् **ॐ नमः शिवाय** ही पञ्चाक्षर माना गया है।[44] मन्त्र के जाप से पूर्व ऋषि आदि न्यास का विधान किया जाता है। इस मन्त्र के ऋषि वामदेव, छन्द पंक्ति, देवता भगवान् शिव, बीज प्रणव तथा शक्ति उमा कही गई है। भगवान् शिव का मानसिक अथवा बाह्य ध्यान करते हुए इसका एक हज़ार, पाँच सौ अथवा सौ बार जाप करना चाहिए। पञ्चाक्षर का जाप करने वाला साक्षात् शिव तुल्य कहा गया है।

निष्कर्ष

इस प्रकार चन्द्रज्ञानागम के अनुसार अष्टावरणों अर्थात् शाम्भव व्रत के आठ अङ्गों का निरूपण किया गया है। ये सभी अङ्ग भगवान् शङ्कर के समान ही पवित्र एवं पूजनीय कहे गए हैं और शिवसायुज्य की प्राप्ति हेतु सहायक हैं। ये अष्टावरण मनुष्य के काम-क्रोधादि शत्रुओं से शिवभक्तों की रक्षा करते हुए कवच का कार्य करते हैं। सर्वप्रथम गुरु ही त्रिविध दीक्षा के माध्यम से प्रथम अङ्ग का ज्ञान अपने शिष्य को प्रदान करता है। शिष्य भी केवल गुरु को ही अपना सर्वस्य समर्पित कर अहर्निश उनकी सेवा करता है। गुरु ही उसे द्वितीय अङ्ग अर्थात् लिङ्ग प्रदान कर शिवधर्म का बोध करवाता है। तृतीय अङ्ग के रूप में शिव स्वरूप जङ्गम की सेवा भी शैवों के लिए आवश्यक है। इसी प्रकार चतुर्थ आवरण के रूप गुरु, जङ्गम तथा लिङ्ग के चरणों का जल शैवों को ग्रहण करना श्रेयस्कर बताया गया है। शिव को समर्पित वस्तुओं का ही ग्रहण करना प्रसाद नामक पञ्चम आवरण कहा गया है। इसी प्रकार भस्म एवं रुद्राक्ष षष्ठ तथा सप्तम आवरण है, जिसको धारण किए बिना शिव की पूजा सफल नहीं मानी जाती। अन्तिम एवं अष्टम आवरण के रूप में मन्त्र अर्थात् पञ्चाक्षर को भी साक्षात् शिव स्वरूप बताया गया है। शिवभक्तों को इन अष्टावरणों का पालन करना अनिवार्य कहा गया है।

ग्रन्थासूची

1 शारदातिलकतन्त्रम्, पृष्ठ, 590
2 वीरशैव अष्टावरणविज्ञान, उपोद्घात
3 चन्द्रज्ञानागम, क्रियापाद, 1.48
4 वही, 2.2
5 शक्तिविशिष्टाद्वैतवाद दर्शन, पृष्ठ, 199
6 वीरशैव अष्टावरणविज्ञान, पृष्ठ, 1

[7] शिवोपासननिरतस्य भक्तस्य संरक्षकत्वात् अष्ट आवरणानि कवचानि इत्युच्यन्ते। शक्तिविशिष्टाद्वैतवाद दर्शन, पृष्ठ, 199

[8] पारमेश्वरागम, 5.27

[9] चन्द्रज्ञानागम, क्रियापाद, 2.5

[10] वही, 2.15

[11] वही, 2.82

[12] श्रीसिद्धान्तशिखामणिः. 6.16

[13] लिकारो लयबुद्धिस्थो बिन्दुना स्थितिरुच्यते।
गकारात् सृष्टिरित्युक्ता लिङ्गं सृष्ट्यादिकारणम्।।
सूक्ष्मागम, क्रियापाद, 6.5

[14] रूपित्वात् सकलस्तद्वत्तस्मात् सकलनिष्कलः।
निष्कलत्वान्निराकारं लिङ्गं तस्य समागतम्।।
शिवमहापुराण, विद्येश्वरसंहिता, 5.11

[15] श्रीलिङ्गपुराणम्, पूर्वभाग, 74.13

[16] चन्द्रज्ञानागम, क्रियापाद, 3.23

[17] वही, 3.24

[18] वही, 3.24

[19] वही, 3.25

[20] पारमेश्वरागम, 5.28

[21] पुनः पुनर्गच्छतीति जङ्गमः। शब्दकल्पद्रुमः, द्वितीय काण्ड, पृष्ठ, 502

[22] चन्द्रज्ञानागम, क्रियापाद, 4.6

[23] पादप्रक्षालनजातं उदकम् इति पादोदकम्।
शब्दकल्पद्रुमः, तृतीय काण्ड, पृष्ठ, 112

[24] पादतीर्थं त्रिधा शम्भोर्गुरुजङ्गमयोरपि।
दीक्षा शिक्षा ज्ञानमिति त्रिसंज्ञं तद्भवत्यहो।।
चन्द्रज्ञानागम, क्रियापाद, 5.5

[25] वही, 5.15

[26] वसोः पवित्रमसि शतधारं वसोः पवित्रमसि सहस्रधारम्।
देवस्त्वा सविता पुनातु वसोः पवित्रेण शतधारेण सुप्वा कामधुक्षः।।
शुक्लयजुर्वेद, माध्यन्दिनसंहिता, 1.3

[27] ऋतं सत्यं परं ब्रह्म पूरु। कृष्णपिङ्गलम्।
ऊर्ध्वरेतं विरूपाक्षं विश्वरूपाय वै नमः।।
तैत्तिरीयारण्यक, 10.12.1

[28] चन्द्रज्ञानागम, क्रियापाद, 5.14

[29] वही, 5.20

[30] शिवेन भुक्तं भुञ्जीयात् तत्पीतं हि जलं पिबेत्।
शिवाघ्रातं सदा जिघ्रेदेष धर्मः सनातनः।। वही, 5.22

[31] वही, 5.23

[32] वही, 5.21

[33] शिवमहापुराण, वायवीयसंहिता, पूर्वखण्ड, 28.13

[34] चन्द्रज्ञानागम, क्रियापाद, 6.31

[35] वही, 6.40

[36] वही, 7.5

[37] वही, 7.6

[38] रुद्राक्षाणां तु सद्भक्त्या धारणे स्यान्महाफलम्।
धात्रीफलप्रमाणं तु श्रेष्ठमेतदुदाहृतम्।।
बदरीफलमात्रं तु मध्यमं प्रोच्यते बुधैः।
अधमं चणमात्रं स्यादिति विद्धि बृहस्पते।। वही, 7.9-10

[39] ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चेति शिवाज्ञया।
वृक्षा जाताः पृथिव्यां तु तज्जातीयाः शुभाक्षकाः।। वही, 7.11

[40] वही, 7.14

[41] कल्याण, शिवोपासना अङ्क, पृष्ठ, 229

[42] चन्द्रज्ञानागम, क्रियापाद, 8.5

[43] वही, 8.9

[44] मन्त्रमहार्णवः, पृष्ठ, 91

सहायक ग्रन्थ-सूची

- कल्याण(शिवोपासना अङ्क) : सम्पादक : राधेश्याम खेमका, प्रकाशक : गीताप्रेस, गोरखपुर, वर्ष : 1993
- चन्द्रज्ञानागम : सम्पादक : पं० व्रजवल्लभद्विवेदी, प्रकाशक : शैवभारती शोधप्रतिष्ठानम् जंगमवाडीमठ, वाराणसी, संस्करण : 1994
- तंत्रागमीय ज्ञानकोश : संकलनकर्ता : डॉ० चन्द्रशेखर शिवाचार्य तथा पं० व्रजवल्लभद्विवेदी, प्रकाशक : शैवभारती शोधप्रतिष्ठानम् जंगमवाडी-मठ, वाराणसी, 2008
- तैत्तिरीयारण्यक : प्रकाशक : आनन्दाश्रम मुद्रणालय, पूना
- पारमेश्वरागम : सम्पादक : पं० व्रजवल्लभद्विवेदी, प्रकाशक : शैवभारती शोधप्रतिष्ठानम् जंगमवाडीमठ, वाराणसी, 1995
- मन्त्रमहार्णवः : प्रकाशक : खेमराज श्रीकृष्णदास, बम्बई, संस्करण : 2011
- वीरशैव अष्टावरणविज्ञान : लेखक : डॉ० चन्द्रशेखर शिवाचार्य महास्वामी, प्रकाशक : शैवभारती-शोधप्रतिष्ठान, जंगमवाड़ीमठ, वाराणसी, संस्करण : द्वितीय, वर्ष : 2011
- शक्तिविशिष्टाद्वैतदर्शनम् : लेखक : डॉ टी जी सिद्धप्पाराध्य, प्रकाशक : श्रीमज्जगद्गुरुश्रीवीरगङ्गाधरशिवाचार्य, रम्भापुरी संस्थान मठ, मैसूर, संस्करण : प्रथम, 1961
- शब्दकल्पद्रुम : लेखक : स्यार राजा राधाकान्तदेव बहादुर, प्रकाशक : नाग पब्लिशर्स, ज्वाहर नगर, दिल्ली
- शिवमहापुराण : प्रकाशक : गीताप्रेस, गोरखपुर, संस्करण : 2024
- शारदातिलकतन्त्रम् : सम्पादक एवं व्याख्याकार : डॉ० सुधाकर मालवीय, प्रकाशक : चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली, 2016
- शुक्लयजुर्वेदीयमंत्रसंहिता : सम्पादक : पं० वेणीराम गौड़, प्रकाशक : व्यास प्रकाशन, मानमंदिर, वाराणसी, 2010
- श्री सिद्धान्त शिखामणिः : हिन्दी व्याख्याकार : डॉ० राधेश्याम चतुर्वेदी, प्रकाशक : शैवभारती शोधप्रतिष्ठानम् जंगमवाडीमठ वाराणसी, 2006
- सूक्ष्मागमः : सम्पादक : पं व्रजवल्लभद्विवेद, प्रकाशक : शैवभारती-शोधप्रतिष्ठानम् जंगमवाड़ीमठ वाराणसी, संस्करण : प्रथम, वर्ष : 1994